इकाई 10 रस का तात्पर्य और विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 रस का तात्पर्य

10.3 रस की विशेषताएँ

10.4 सारांश

10.5 शब्दावली

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्–

- काव्यशास्त्र में रस शब्द का तात्पर्य क्या है इससे परिचित हो पायेगें।
- रस की विशेषताएँ क्या है इससे परिचित हो पायेगें।
- रस सम्बन्धी तकनीकि साहित्यिक शब्दावली से परिचित हो पायेगें।

10.1 प्रस्तावना

रसवादी आचार्य रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। वैदिक श्रुति **'रसो वै सः'** के आधार पर रस को आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही माना गया है। भारतीय समीक्षाशास्त्र में रस को आलोचना का मानदण्ड स्वीकार किया गया है। निश्चय ही रस की महिमा बड़ी व्यापक है। जीवन की गति यह निश्चय कर देती है कि 'रस' जीवन का सार है और मानव–मात्र का जीवन 'रस' के लिए है। जितने भी क्रिया कलाप हैं, उनकी प्रेरणा और लक्ष्य, उनका उदय और अस्त रस में ही है। साथ ही, साधनावस्था भी रस की अवस्था हैं, इसमें सन्देह नहीं, यदि हम उसको इस रूप में परिणत कर सकें। यह निर्विवाद सत्य है कि रस जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व है। सम्भवतः रस की इस महत्ता को लक्षित कर ही भरत ने लिखा था–

'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।'

इकाई संख्या 10 (रस का तात्पर्य और विशेषताएँ) के अन्तर्गत रस शब्द अनेकार्थक है, जैसे सार–आसव, धातु–भस्म, हर्ष, आनन्द आदि किन्तु भरत के अनुसार रस का तात्पर्य 'आस्वाद्य' है और उसकी विशेषता अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, वेदान्तर स्पर्श शून्य, ब्रह्मस्वाद सहोदर और लोकोत्तर चमत्कार प्राण रूप कहा गया है।

10.2 रस का तात्पर्य

नाट्यशास्त्र से भिन्न अन्य शास्त्रों या दर्शन ग्रन्थों में 'रस' शब्द का उल्लेख तो है, परन्तु साहित्य या कला से सम्बन्ध तत्त्व के रूप में इसका विवेचन नहीं है। वेदों में

रस या सोम रस के निर्माण की पद्धति का, आयुर्वेद में 'रसों की निर्मिति–प्रक्रिया' का निरूपण है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस–सिद्धांत के उद्भव–विकास और प्रतिपादन का इतिहास बहुत रोचक है। किन्तु रस का नाट्कला के सिद्धांत के रूप में विवेचन सर्वप्रथम और प्रमुख रूप से भरत के नाट्यशास्त्र में ही उपलब्ध होता है।

'जग्राहपाठ्यमृग्वेदात् सामेभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।

इस प्रकार ऋग्वेद से पाठ्य, साम से गान, यजुर्वेद से अभिनय एवं अथर्ववेद से रस का उपादान हुआ है। पाठ्य, गान एवं अभिनय के ऋग्, साम एवं यजुः से ग्रहण की उपपत्ति तो वन जाती है। किन्तु अथर्ववेद में रस के उपादान का रहस्य आपाततः समझ में नहीं आता। किन्तु इन नाट्यशास्त्रोत्तर ग्रन्थों में वर्णित रस का स्वरूप 'आस्वाद्य पदार्थ' का है जिनका सेवन करने से मनुष्य को शक्ति और स्वास्थ्य लाभ होता है। कतिपय उपनिषद् आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों में ब्रह्म को या निराकार ईश्वर को भी रस कहा गया है, जिसे प्राप्त कर मानव आत्मा आनन्दित हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र के समकालीन या पूर्ववर्ती ग्रन्थों में अनास्वाद्य पदार्थों के लिए भी 'रस' शब्द का प्रयोग मिलता है। उदाहरणार्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'विष' के लिए रस शब्द का बार–बार उल्लेख हुआ है। इस प्रकार नाट्यशास्त्र के पूर्ववर्ती तथा समकालीन ग्रन्थों में उपलब्ध रस–संदर्भों के अध्ययन से यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट हो जाता हैं कि 'रस' शब्द का तात्पर्य आनन्द नहीं है, वह एक पदार्थ मात्र है जो उपभोक्ता की दृष्टि से आस्वाद्य और अनास्वाद्य भी हो सकता है।

काव्य रस का सविध एवं सांगोपांग निरूपण सर्वप्रथम आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में किया है। नाट्यशास्त्र की रचना नाट्य के रंगमंच पर प्रयोग को ध्यान में रखकर की गई है। आचार्य भरत ने काव्य और नाट्य शब्दों का प्रयोग अपर पर्याय के रूप में किया है। अभिनवगुप्त ने भी अभिनवभारती के 'तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः' वाक्यांश की टीका करते हुए कहा है कि रस समुदाय ही नाट्य है–**नाट्यत समुदायरूपाद्रसाः यदि वा नाट्यमेवरसः। रससमुदायो हि नाट्यम् .....काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपात्मकमेव..... काव्यं च नाट्यमेव।**

इस प्रकार नाट्यशास्त्र के षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में रस एवं भावों की विस्तार पूर्वक मीमांसा हुई है। वही पर भरत ने आठ रसों की गणना कराते हुए उन्हें द्रुहिण प्रोक्त बताया गया है–**'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ताः द्रुहिणेन महात्मना।'** देवी भागवत के अनुसार द्रुहिण ब्रह्मा का ही दूसरा नाम है–**द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता'** द्रुहिण पद से भरत का निर्देश भी ब्रह्मा की ओर ही प्रतीत होता है। ब्रह्मा ने ही देवताओं के आग्रह पर चारों वेदों से नाट्य के चार मुख्य तत्त्व पाठ्य, संगीत, अभिनय एवं रस का क्रमशः ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की है। अभिनवगुप्त ने उसका विवेचन करते हुए कहा है कि अथर्ववेद में शान्ति, मरण आदि कर्मों का विधान हुआ है जिनमें ऋत्विक् नट के समान ही नाना प्रकार के तान्त्रिक अनुभवों का अभिनयात्मक अनुष्ठान करता है। तथा वहाँ पर धृति, प्रमोद आदि व्यभिचारिभावों का जो परमार्थतः सत् नहीं होते, ग्रहण एवं आचरण किया जाता है। इसके अतिरिक्त काव्य रस की आनन्द में ही विश्रान्ति होने की तरह अथर्ववेद में भी मारण, मोहन, उच्चारण आदि तत्तद सभी प्रकार के अनुष्ठानों का पर्यावसान शान्ति में ही होता है। इसीलिए अथर्ववेद से रस का उपादान युक्तियुक्त ही हुआ है और इस प्रकार नाट्यशास्त्र एवं अभिनवगुप्त दोनों के अनुसार काव्य में रस की धरणा का स्रोत वैदिक साहित्य ही ठहरता है। इसे दिव्य

इसलिए कहा गया है कि दिव्य–प्रोक्ता ब्रह्मा के द्वारा ही अथर्ववेद से ग्रहणकर काव्य में रस का आधान हुआ।

आचार्य भरत के अनुसार–आचार्य भरत ने रस के इस महत्त्व को बताते हुए कहा है कि नाट्य का कोई भी तत्त्व रस के बिना प्रवृत्त नहीं होता, अतः सबसे पहले इनके द्वारा रस की परिभाषा प्रस्तुत की जाती है। रस का सामान्य लक्षण करते हुए भरत ने कहा है कि–**'तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'** अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्याभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इसका दृष्टान्त देते हुए नाट्यशास्त्र में बताया गया है कि–**'को दृष्टान्तः? अत्राह यथाहि नानाव्यञ्जनौषधिद्रव्यसंयोगाद् रसनिष्पतिः तथा नानाभावोपगमाद् रसनिष्पत्तिः। यत्राहि–गुडादिभिः द्रव्यैः व्यंजनैः औषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्त्यन्ते तथा नाना भावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसतामाप्नुवत्ति इति'** अर्थात् जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यजंन एवं औषधि, द्रव्यों के संयोग से रसरसायन का निष्पादन होता है उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों के विलक्षण संयोग से काव्य में रस की निष्पत्ति होती है तथा जिस प्रकार गुड़ आदि द्रव्यों, व्यंजनो एवं औषधियों से षाडवादि रस बनते हैं, उसी प्रकार नानाप्रकार के भावों से उद्रिक्त स्थायीभाव ही रसत्व को प्राप्त होते हैं। रस क्या वस्तु हैं? इसका उत्तर देते हुए नाट्यशास्त्र में कहा है कि 'आस्वाद्यत्व' ही रस है। अथवा उसे रस इसलिए कहते हैं कि वह आस्वाद्य है।

रस की आस्वाद्यता के स्वरूप का निर्वचन करते हुए आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि–**'अत्राह–रस इति कः पदार्थः? उच्यते आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रसः? यथा हि नानाव्यञ्जन संस्कृतमन्नंभुञ्जानारसानास्वादयन्ति सुमनसः, पुरुषाः, हर्षादींश्च अधिगच्छन्ति तथा नानाभावानिभनयव्यञ्जितान् वागङ्सत्वोपेतान् स्थायिभावा नास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति, तस्मान्नाट्यरसा इत्यभिख्याताः।'** अर्थात् जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यञ्जन से सुसंस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए व्यक्ति रस का आस्वादन करते हैं और प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों एवं वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनय से व्यञ्जित तत्तद् स्थायिभावों का सहृदय प्रेक्षक आस्वादन करते हैं और हर्षादि से पुलकित होते हैं। नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि–

'नानाभिनयसम्बन्धान् स्थायिभावांस्तथा बुधः।
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः।।'

अर्थात् लोक में जिन भावों से नाना प्रकार के सुखदुःखात्मक अनुभव होते हैं, नाट्य में उन्हीं से एकमात्र आनन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिए नाट्य में ही उन्हें रस कहा है।

रस के प्रसंग में आस्वाद पद का प्रयोग प्रायः किया जाता है। स्वयं नाट्यशास्त्र में काव्य के प्रसंग में रस पद के प्रयोग का हेतु उसकी आस्वादनीयता को बताया है–**'रस इति कः पदार्थ उच्यते, आस्वाद्यत्वात्।'** इसका अर्थ यह है कि आस्वाद्य होने से ही रस को रस कहते हैं अथवा रस का शाब्दिक अर्थ आस्वाद्य होना है। शृंगारादि को रस इसीलिये कहते हैं कि नाट्य में वे ही आस्वाद्य हैं। यह मुनियों के इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि नाट्य में जिन्हें रस कहा जाता है उनमें रसत्व किस प्रकार है?

'ये रसा इति पठ्यन्ते नाट्ये नाट्यविचक्षणैः।
रसत्वं केन वै तेषामेतदारव्यातुमर्हसि।।'

आगे नाट्यशास्त्र में ही बताया है कि रस का आस्वाद किस प्रकार होता है। विविध प्रकार के व्यञ्जनों को खाने से लोग जिस प्रकार विविध प्रकार के रसों का आस्वाद करते हैं और प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार नाट्य में भावों के अभिनय से व्यंजित स्थायिभावों का आस्वाद प्रेक्षक करते हैं और प्रसन्न होते हैं। इसीलिए नाट्य में इन्हें भी रस कहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि श्रृंगार आदि को रस संज्ञा की प्राप्ति काव्य में उनकी आस्वादनीयता के कारण है।

यहाँ रस को आस्वाद्य कहा है जिसका अर्थ है आस्वाद का विषय होना। किन्तु रस तो अनुभवमात्र है वह विषय कैसे हो सकता है? अतः आचार्यों ने इसे आस्वाद की ही संज्ञा दी है। विश्वनाथ ने 'ओदनः पचति' के समान ही इसे भी लाक्षणिक प्रयोग माना है। ओदन तो पक जाने पर कहा जाना चाहिये पर पकने के पूर्व ही जिस प्रकार उसे ओदन कहा जाता है उसी प्रकार आस्वाद को ही रस कहना चाहिये। पर वस्तुएँ आस्वाद्य होती हैं इसीलिये उसके अनुकरण पर ही इसे भी आस्वाद्य कहा गया है। अन्यथा रस तो साक्षात् आस्वादनात्मक अनुभव ही है–**'आस्वादनात्मानुभवो रसः काव्यार्थ उच्यते।'**

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक के मन में स्थायी रूप से अवस्थित रत्यादि स्थायी भाव ही जब विभावादि भावों से संयुक्त होकर मन के द्वारा सहृदयों के आस्वाद का विषय होते हैं तो श्रृंगारादि रस कहे जाते हैं–**'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार आस्वाद्य मानता को लेकर ही इनके लिए रस पद का व्यपदेश हुआ है।

आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार–भरत ने रस को आस्वाद्य कहा था उसी सरणि पर आनन्दवर्धन ने प्रतीयमान को स्वादु कहकर उसकी महिमा गाई। धनञ्जय ने इसे आत्मानन्द से जायमान एक विशेष प्रकार का स्वाद ही कहा। पर इनकी आत्मा और अभिनवगुप्त के 'स्वात्म' में अन्तर है। धंनजय की आत्मा व्यक्ति का मन ही है। यही उसका 'स्व' है। धनिक ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट कर दिया है कि 'आत्मानन्द समुद्रवः' में प्रयुक्त आत्मपद हृदय वाची है।

आचार्य धनंजय के अनुसार–आचार्य धनंजय ने रसानुभूति के स्वाद पक्ष को विशेष रूप से ग्रहण किया है। भरत की तरह वे भी स्वाद्य होने से ही उसे रस कहते हैं–**'रसः स एव स्वाद्यत्वात्।'** इस स्वाद्यता की पुष्टि इस बात से भी होती है कि यह केवल रसिक अर्थात् सहृदय सामाजिक का अनुभव है–**'रसिकस्यैव वर्तनात्।'** किसका आस्वाद रस है? इसका धनंजय ने बहुत ही स्पष्ट विवेचन किया है। विभावादि के द्वारा भावित होकर सामाजिक के ही रत्यादि आस्वादित होने लगते हैं–

'काव्याद्विभावसंचार्यनुभावप्रख्यतां गतैः।
भावितः स्वदते स्थायी रसः स परिकीर्तितः।।'

जिस प्रकार बच्चे मिट्टी के बने हाथी घोड़ों से जब खेलते होते हैं तो उन्हें जो आस्वाद मिलता है वह उनके अपने उत्साह का ही अनुभव होता है उसी प्रकार अर्जुन आदि के वृत्तातों को सुनकर या देखकर प्रेक्षकों का अपना उत्साह ही अपने आस्वाद का विषय हो जाता है–

'क्रीड़तां मृण्मयैर्यद्वद्बालानां द्विरदादिभिः।
स्वोत्साहः स्वदते तद्वच्छ्रोतृणामर्जुनादिभिः।।'

किन्तु **'स्वादः काव्यार्थसम्भेदादात्मानन्दसमुद्भवः'** की उन्हीं की उक्ति इस स्वाद को आत्मानन्द से उत्पन्न बताती है। फिर यह स्वाद स्थायी भाव का है या आत्मानन्द का? इस विषय में धनिक ने स्वाद की व्याख्या सूक्ष्म रूप से की है। उनका कहना है कि विभावादि से संसृष्ट अर्थात् प्रोदभूत स्थायी ही काव्यार्थ है। उसका भावक (सहृदयसामाजिक) के मन से जब सम्भेद होता है अर्थात् काव्यार्थ और सामाजिक का हृदय दोनों परस्पर संवलित होते हैं और परिणामस्वरूप जब स्व और पर का भान मिट जाता है तो प्रबलतर स्वानन्द की उद्भूति होती है वही स्वाद है–**'काव्यार्थेन विभावादिसंसृष्टस्थाय्यात्मकेन भावकचेतसः संभेदे अन्योन्यसंवलने प्रत्यस्तमितस्वारविभागे सति प्रबलतरस्वानन्दोद्भूतिः स्वादः।'**

आचार्य महिमभट्ट के अनुसार– महिमभट्ट ने भी रसानुभूति को सुखास्वाद कहा है। वे रस को अनुमेय कहते हैं तथा विभावादि को उसका अनुमापक लिङ्ग। लोक में भी लिङ्ग से शोक आदि का अनुमान किया जाता है पर वहाँ तो सुखास्वाद का रंचमात्रा भी अनुभव नहीं होता। प्रत्युत साधुमहात्माओं को भी भय आदि से दुःख ही होता है। इसका उत्तर दिया है कि–**'यत्र विभावादिमुखेन भावानामवगमस्तत्रैव सहृदयैकसंवेद्यो रसास्वादोदय इति वस्तुस्वभाव एवायम्'** अर्थात् कहने का आशय यह है कि लोक में काव्य की यह विशेषता वस्तु के इस स्वभाव के कारण है क्योंकि जब वह साक्षात् अनुभव का विषय होती है तो उसका स्वाद सुखद या दुःखद हुआ करता है। पर वही वस्तु जब विभावादि के द्वारा काव्य में निरूपित होती है तो उससे होने वाला आस्वाद मात्र सुखात्मक होता है।

महिमभट्ट वस्तुवादी आचार्य है। वे रसास्वाद को मात्र सुखद अवश्य मानते हैं पर उसे वर्ण्यवस्तु या काव्यवस्तु का स्वभाव कहते हैं। आत्मा की अनुभूति नहीं। इसीलिये वे उसे आनन्द या ब्रह्मास्वादसहोदर आदि कुछ नहीं कहते। उनके मत से काव्यार्थ का ही आस्वादनात्मक अनुभव रस है। महिमभट्ट ने रसास्वाद को सचेतन चमत्कारकारी कहा है जो उसके स्वरूप का निरूपण है। सचेतन अर्थात् सहृदय के हृदय में चमत्कार के आधान का कारण रसस्वाद है।

आचार्य मम्मट के अनुसार–काव्यप्रकाशकार ने बड़े ही उत्तम ढंग से व्यवस्थित करते हुए कहा है कि–

'कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।

विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः।।

अर्थात् लोक में हम जिन्हें कारण, कार्य एवं सहकारी कारण कहते हैं, वही यदि काव्य में वर्णित हो तो उनकी क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव संज्ञा होती है। उसी विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव से व्यक्त रत्यादि स्थायी भाव 'रस' कहलाते है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–आचार्य विश्वनाथ आस्वादन के अतिरिक्त रस की किसी भी रूप में सत्ता नहीं स्वीकारते। उनका कहना है कि 'रसः स्वाद्यते' का प्रयोग अशुद्ध है क्योंकि आस्वाद ही तो रस है। अतः वह आस्वाद्य अर्थात् आस्वाद का विषय कैसे हो सकता है? अतः रस एवं आस्वाद में यह भेद कल्पनिक है। आचार्य विश्वनाथ ने रस

को काव्य की आत्मा माना है। शास्त्रों में भी रस को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। वाग्विदग्धता या उक्तिवैचित्र्य की प्रधानता रहने पर भी रस ही काव्य का जीवन है–**'वाग्वैदग्ध्यप्रधानेपि रस एवात्र जीवितम्।'** रस शब्द का अर्थ है आस्वाद्य अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाय स्वाद लिया जाय वह रस है। रस धातु का अर्थ होता है आस्वादन करता। यहाँ आस्वादन का अर्थ चखना न होकर चखकर आनन्द लेना है। रस में भावों का आस्वादन होता है। अतः भावों के आस्वादन को ही रस कहते है–**'रस्यते इति रसः'** रस का आस्वादन सहृदय सामाजिक को प्राप्त होता है जो विशेश प्रकार के पुण्य के कारण ही रसास्वादन के भाजन बनते है।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार–पण्डितराज जगन्नाथ ने कमनीय काव्यव्यापार से उत्पन्न आस्वाद को अन्य सभी प्रकार के अनुभवों से भिन्न अर्थात् विलक्षण बताया है–**'विलक्षणो हि कमनीयकाव्यव्यापारज आस्वादः प्रमाणन्तरजादनुभवात्।'**

10.3 रस की विशेषताएँ

काव्य के विशेषताओं के रूप में आचार्यों ने इसे अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, वेदान्तरस्पर्श शून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर और लोकोत्तर चमत्कार प्राण रूप कहा है। आचार्य विश्वनाथ ने पूर्ववर्ती आचार्यों–अभिनव गुप्त एवं मम्मट की रससंबंधी मान्यताओं का संग्रह करते हुए रस के विशेषताओं पर विचार करते हुए कहा है कि–

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।

लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।

अन्तःकरण में रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण के सुन्दर स्वच्छ प्रकाश होने से रसा का साक्षात्कार होता है। अखण्ड, अद्वितीय, स्वयं प्रकाशस्वरूप आनन्दमय और चिन्मय (चमत्कारमय) यह रस स्वरूप है। रस के साक्षात्कार के समय दूसरे वेद्य (विषय) का स्पर्श तक नहीं होता। रसास्वाद के समय विषयान्तर का ज्ञान पास तक नहीं फटकने पाता, अतएव यह ब्रह्मास्वाद (समाधि) के समान हेाता है। अलौकिक चमत्कार है प्राण जिसका उस रस का कोई ज्ञाता जिसमें पूर्वजन्म के पुण्य से वासनाख्य संसार है, वही अपने आकार की भाँति अभिन्न रूप से आस्वादन करता है। यहाँ सत्वोद्रेक रस का हेतु या कारण हैं तथा अखंड, स्वप्रकाशानंद चिन्मय आदि पदो।के द्वारा रस के विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

1. रस का आविर्भाव सत्व के उद्रेक होने पर ही होता है। रजोगुण और तमोगुण से रहित अंन्तः करण को सत्व कहते है। सामान्य शब्दावली में कह सकते हैं–सांसारिक रागद्वेष से मुक्त चित्त की विशदता ही सतोगुण की स्थिति। यह आस्वाद ऐन्द्रिय चेतना से भिन्न होने के कारण अत्यंत परिष्कृत कोटि का या उदात्त कोटि का होता है। जिसका आस्वादन हो वह रस है **'रस्यते इति रसः'** या **'आस्वाद्यते इति रसः'**। रस सहृदय संवेद्य है अर्थात् सहृदय ही रस का आस्वादन करता है। क्योंकि रस की उत्पत्ति रजोगुण एवं तमोगुण से रहित मन में होती है जहाँ सतोगुण का उद्रेक होता है। सतोगुण की स्थिति में मनुष्य सांसारिक राग–द्वेष से मुक्त होकर उससे ऊपर उठ जाता है। अतः रस का आस्वाद ऐसी स्थिति में होता है जब चित्त में रागद्वेषादि का तिरोभाव होकर विशालता या

विशालहृदयता का प्रादुर्भाव होता है अर्थात् रसास्वादन करने के पश्चात् व्यक्ति उदारचेता, विशाल हृदय वाला एवं परिष्कृत रुचि वाला हो जाता है। रसास्वाद ऐन्द्रिय उत्तेजना से रहित एवं सात्त्विक होता है। अनिवार्यतः यह आस्वाद आनन्दमय है और इस आनंद की तीन विशेषताएँ हैं अखंडता चिन्मयता और वेद्यांतर स्पर्श शून्यता।

2. 'अखण्ड' का यहाँ अर्थ है विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव, संचारी भाव आदि की खंड–खंड चेतना नहीं होती सभी की अखंड चेतना होती है। दूसरी विशेष बात यह कि उस समय किसी अन्य विषय की चेतना नहीं होती यही **'वेद्यान्तस्पर्शशून्य'** अनुभूति है। इसलिए रस अखण्ड होता है। इसका अभिप्राय यह है कि रसानुभूति के समय विभाव आदि एवं रति आदि का पृथक्–पृथक् अनुभव नहीं होता अपितु सबका एकीकरण हो जाता है। विभावादि रस के साथ मिलकर अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व को उसमें लय कर देते हैं एवं सबों की अनुभूति एक साथ हेाती है। दूसरी बात यह है कि रसबोध के समय आत्मा पूर्णतः तन्मय हो जाती है।

3. रस स्वप्रकाशानन्द एवं चिन्मय है। इस का अर्थ आनन्दमय चेतना से अर्थात् रस का प्रकाशन आत्मचैतन्य से होता है। यह आनन्द की ऐसी स्थिति है जहाँ विषय सुख के सदृश आनन्द की उपलब्धि नहीं होती। बल्कि अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। यह आनन्द ऐन्द्रिय सुख से भिन्न कोटि का होता है। चिन्मय का अर्थ है यह अनुभूति बुद्धि मृण्मय न होकर विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है। कहने का आशय यह है कि रस स्वप्रकाशानंद है और चिन्मय भी अर्थात् रसानुभूति आत्म–चैतन्य से प्रकाशित आनंदमयी चेतना है। इस आनंदमयी में मृण्मय अर्थात् घोर ऐंन्द्रिय अनुभूति का अभाव रहता है और चैतन्य आत्मास्वाद का योग। इस तरह रस ऐन्द्रिय सुख की अनुभूति मात्र नहीं है वह एक प्रकार का परिष्कृत आनंद है।

4. रस 'लोकोत्तर चमत्कार प्राण' है। रस ऐसी चेतना है जिसमें ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है। यह एक अलौकिक, अनिर्वचनीय स्थिति है। आधुनिक शब्दावली में अलौकिक काफी विवादास्पद शब्द है और अलौकिक को लेकर ही आधुनिक विचारकों ने रस सिद्धांत पर आक्षेप किए है। उनका कहना है कि काव्य लोक की वस्तु है लौकिक अनुभवों पर आधारित होती है। ऐसी स्थिति के कारण उसके आस्वाद को अलौकिक कहना कहाँ तक उचित है। लौकिक का अर्थ न अतीन्द्रिय है, अतिप्राकृतिक, न आध्यात्मिक। अलौकिक अनुभूति का अर्थ है–ऐसी अनुभूति जो मात्र लौकिक न होकर लोकोत्तर हो, अर्थात् परिष्कृत अनुभूति। इस प्रकार रस को लोकोत्तर चमत्कार प्राण कहा गया हैं अर्थात् रसानन्द ऐन्द्रिय आनन्द देने वाला अनिर्वचनीय है अर्थात् रसानन्द ऐन्द्रिय आनन्द से भिन्न है। अलौकिक का अर्थ है अलोकसामान्य। यह अतिप्राकृतिक न होकर अतीन्द्रिय होता है। अलोकसामान्य का अभिप्राय लौकिक वस्तु से विलक्षण होना है।

5. रसानुभव अन्य ज्ञान के अनुभव से रहित है। रस पूर्ण तन्मयता की स्थिति है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ हुआ रस की स्थिति में सहृदय स्पवर पर की भावना से मुक्त हो जाता है। देशकाल के बंधन से ऊपर उठ जाता है और स्थिति या प्रसंग से पूर्ण तादात्म्य का अनुभव करता है। यही स्थिति साधारणीकरण कहलाती है अर्थात् कहने का आशय यह है कि आत्मा को पूर्ण तन्मयावस्था में अन्य ज्ञान का अनुभव नहीं होता। रसानुभव पूर्ण तन्मयीभाव की

अवस्था का द्योतक है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि रसानुभूति की स्थिति में प्रमाता अपने एवं पराये स्व एवं पर की भावना से मुक्त होकर प्रस्तुत प्रसंग के साथ इस प्रकार तन्मय हो जाता है कि उसे अन्य ज्ञान का बोध नहीं होता। वह समय एवं काल की सीमा में न बँधकर पूर्णतः आत्मलीन हो जाता है। देश एवं काल की सीमाएँ उसे प्रभावित नहीं करती।

6. रस ब्रह्मास्वाद सहोदर है। सहोदर का अर्थ है सगाभाई अर्थात् रस ब्रह्मास्वाद (ईश्वरीय आनंद) का सगाभाई या ब्रह्मास्वाद के समान है। ब्रह्मास्वाद सहोदर का दूसरा विशिष्ट अर्थ है–रस विषयानंद से भिन्न चिन्मय अनुभव है। रस शुद्ध आत्मानंद या ब्रह्मास्वाद नहीं है क्योंकि ब्रह्मास्वाद स्थायी होता है, रस अस्थायी स्थिति है। इसके अलावा रस लौकिक स्थितियों का पूरी तरह लोप नहीं होता। मूल बात यह कि काव्यानंद और ब्रह्मास्वाद दोनों आत्मानंद के ही भेद हैं। यहाँ रसानन्द को ब्रह्मानन्द के समकक्ष या समतुल्य माना गया है। यह विषयानन्द या ऐन्द्रिय आनन्द से सर्वथा भिन्न होकर चिदानन्द का विषय हो जाता है। रस आत्मा के विषय हो जाता है इन्द्रियों का नहीं। फिर भी रसानन्द को वास्तविक ब्रह्मानन्द नहीं कहा जा सकता क्योंकि ब्रह्मानन्द स्थायी होता है एवं रस अस्थायी। ब्रह्मानन्द में लौकिक विषयों का तिरोभाव हो जाता है किन्तु रसानन्द लौकिक विषयों से नितान्त मुक्त नहीं हो पाता। उसमें इसकी स्थिति वर्तमान रहती है। सारांश यह है कि रस काव्य का आस्वाद है और यह आस्वाद एक प्रकार की आनंद चेतना है। आत्म–चेतना का अर्थ है आत्म साक्षात्कार का आनंद।

बोध प्रश्न–1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें

   I. आचार्य भरत ने रस किसे कहा है? (आस्वाद्यत्व/चीनी का रस)

   II. रससूत्र का लक्षण क्या है? (विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः/रस्यते आस्वाद्यते इति रसः)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   I. आचार्य काव्यप्रकाशकार ने विभाव की ..... को संज्ञा दी है? (कारण/कार्य)

   II. आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में रस शब्द के प्रयोग का हेतु .....कहा है? (आस्वाद्यनीयता/रस का न होना)

बोध प्रश्न–2

1. रस का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

   .....

   .....

2. रस की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

   .....

   .....

   .....

अभ्यास प्रश्न 1

1. रस के स्वरूप एवं विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

10.4 सारांश

इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

काव्य रस का सविध एवं सांगोपांग निरूपण सर्वप्रथम आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में किया है। नाट्यशास्त्र की रचना नाट्य के रंगमंच पर प्रयोग को ध्यान में रखकर की गई है। आचार्य भरत ने काव्य और नाट्य शब्दों का प्रयोग अपर पर्याय के रूप में किया है। अभिनवगुप्त ने भी अभिनवभारती के 'तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः' वाक्यांश की टीका करते हुए कहा है कि रस समुदाय ही नाट्य है–**नाट्यत समुदायरूपाद्रसाः यदि वा नाट्यमेवरसः। रससमुदायो हि नाट्यम् .....काव्यं तावन्मुख्यतो दशरूपात्मकमेव..... काव्यं च नाट्यमेव।**

नाट्यशास्त्र के षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में रस एवं भावों की विस्तार पूर्वक मीमांसा हुई है। वही पर भरत ने आठ रसों की गणना कराते हुए उन्हें द्रुहिण प्रोक्त बताया गया है–**'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ताः द्रुहिणेन महात्मना।'** देवी भागवत के अनुसार द्रुहिण ब्रह्मा का ही दूसरा नाम है–**द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता।'** द्रुहिण पद से भरत का निर्देश भी ब्रह्मा की ओर ही प्रतीत होता है। ब्रह्मा ने ही देवताओं के आग्रह पर चारों वेदों से नाट्य के चार मुख्य तत्त्व पाठ्य, संगीत, अभिनय एवं रस का क्रमशः ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की है। रस का सामान्य लक्षण करते हुए भरत ने कहा है कि–**'तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'** अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्याभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। काव्य के विशेषताओं के रूप में आचार्यों ने इसे अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, वेदान्तरस्पर्श शून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर और लोकोत्तर चमत्कार प्राण रूप कहा है।

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।

लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।

यहाँ सत्वोद्रेक रस का हेतु या कारण हैं तथा अखंड स्वप्रकाशानंद चिन्मय आदि पदो।के द्वारा रस के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

10.5 शब्दावली

विभाव	–	रस के कारण को विभाव कहते है।
आलम्बन विभाव	–	आलम्बन विभाव के दो पक्ष होते है– आश्रय और आलम्बन
आश्रय	–	जिसके हृदय में भाव जाग्रत होता है
आलम्बन	–	वह पात्र या स्थिति जिसे देखकर आश्रय के मन में भाव जागृति होता है।
उद्दीपन विभाव	–	ब्राह्य वातावरण और आलम्बन की ब्राह्य चेष्टाएँ
अनुभाव	–	आश्रय के शारीरिक विकारों को अनुभाव कहते है।

10.6 कुछ उपयोगी पुस्तके

- अग्निपुराण, अग्निपुराणकार, बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा सीरीज, वाराणसी, 1966
- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पादक नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- काव्यप्रकाश, मम्मट सम्पादक एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी 1988
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि सम्पादक एवं व्याख्या, बटुक नाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1980
- वाक्यपदीय, भर्तृहरि, सम्पादक के. एस अय्यर, भण्डाकर रिसर्च सेन्टर, पूना, 1963
- रससिद्धांत आक्षेप और समाधान, सुन्दर लाल कथूरिया, आदर्श साहित्य प्रकाशन, 1972
- संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, पी.वी काणे, मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी,
- संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, अनुवादक इन्द्रचन्द्र शास्त्री, मोतीलाल बनारसी दास, बनारसी, प्रथम संस्करण
- संस्कृत काव्यशास्त्र में लक्षणा का उद्भव एवं विकास, ठाकुर दत्त जोशी, राजस्थानी ग्रन्थालय, जोधपुर, जनवरी 1986
- अलंकार शास्त्र का इतिहास, कृष्णकुमार, साहित्य भण्डार मेरठ
- काव्यशास्त्र एवं साहित्यिक समालोचना सुबोध, डॉ. देशराज, अमरपब्लिकेशन, दिल्ली

10.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1. i) आस्वाद्यत्व ii) विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः

2. i) कारण ii) आस्वाद्यनीयता

बोध प्रश्न–2

1 नाट्यशास्त्र के षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में रस एवं भावों की विस्तार पूर्वक मीमांसा हुई है। वही पर भरत ने आठ रसों की गणना कराते हुए उन्हें द्रुहिण प्रोक्त बताया गया है–**'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ताः द्रुहिणेन महात्मना।'** देवी भागवत के अनुसार द्रुहिण ब्रह्मा का ही दूसरा नाम है–**द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता।'** द्रुहिण पद से भरत का निर्देश भी ब्रह्मा की ओर ही प्रतीत होता है। ब्रह्मा ने ही देवताओं के आग्रह पर चारों वेदों से नाट्य के चार मुख्य तत्त्व पाठ्य, संगीत, अभिनय एवं रस का क्रमशः ग्रहण कर नाट्यवेद की रचना की है। रस का सामान्य लक्षण करते हुए भरत ने कहा है कि–**'तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।'** अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्याभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

2 काव्य के विशेषताओं के रूप में आचार्यों ने इसे अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, वेदान्तरस्पर्श शून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर और लोकोत्तर चमत्कार प्राण रूप कहा है।

सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।

लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः।

यहाँ सत्वोद्रेक रस का हेतु या कारण हैं तथा अखंड स्वप्रकाशानंद चिन्मय आदि पदो।के द्वारा रस के विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है– जिसका आस्वादन हो वह रस है (**'रस्यते इति रसः'** या **'आस्वाद्यते इति रसः'**)। रस सहृदय संवेद्य है अर्थात् सहृदय ही रस का आस्वादन करता है। अनिवार्यतः यह आस्वाद आनन्दमय है और इस आनंद की तीन विशेषताएँ हैं अखंडता चिन्मयता और वेद्यांतर स्पर्श शून्यता। 'अखण्ड' का यहाँ अर्थ है विभाव, अनुभाव, स्थायी भाव, संचारी भाव आदि की खंड–खंड चेतना नहीं होती सभी की अखंड चेतना होती है। दूसरी विशेष बात यह कि उस समय किसी अन्य विषय की चेतना नहीं होती यही **'वेद्यान्तस्पर्शशून्य'** अनुभूति है। 'चिन्मय' का अर्थ है यह अनुभूति बुद्धि मृण्मय न होकर विलक्षण आनंद की अनुभूति होती है। रस का आविर्भाव सत्व के उद्रेक होने पर ही होता है। रजोगुण और तमोगुण से रहित अंन्तः करण को सत्व कहते है। सामान्य शब्दावली में कह सकते हैं–सांसारिक रागद्वेष से मुक्त चित्त की विशदता ही सतोगुण की स्थिति। यह आस्वाद ऐन्द्रिय चेतना से भिन्न होने के कारण अत्यंत परिष्कृत कोटि का या उदात्त कोटि का होता है। रसानुभव अन्य ज्ञान के अनुभव से रहित है। रस पूर्ण तन्मथता की स्थिति है। आज के संदर्भ में इसका अर्थ हुआ रस की स्थिति में सहृदय स्पवर पर की भावना से मुक्त हो जाता है। देशकाल के बंधन से ऊपर उठ जाता है और स्थिति या प्रसंग से पूर्ण तादात्म्य का अनुभव करता है। यही स्थिति साधारणीकरण कहलाती है। रस स्वप्रकाशानंद है और चिन्मय भी अर्थात् रसानुभूति आत्म–चैतन्य से प्रकाशित आनंदमयी चेतना है। इस आनंदमयी में मृण्मय अर्थात् घोर ऐंन्द्रिय अनुभूति का अभाव रहता है और चैतन्य आत्मास्वाद का योग। इस तरह रस ऐन्द्रिय सुख की अनुभूति मात्र नहीं है वह एक प्रकार का परिष्कृत आनंद है। रस 'लोकोत्तर चमत्कार प्राण' है। रस ऐसी चेतना है जिसमें ज्ञाता की चेतना विलीन हो जाती है। यह एक अलौकिक, अनिर्वचनीय स्थिति है। आधुनिक शब्दावली में अलौकिक काफी विवादास्पद शब्द है और अलौकिक को लेकर ही आधुनिक विचारकों ने रस सिद्धांत पर आक्षेप किए है। उनका कहना है कि काव्य लोक की वस्तु है लौकिक अनुभवों पर आधारित होती है। ऐसी स्थिति के कारण उसके आस्वाद को अलौकिक कहना कहाँ तक उचित है। लौकिक का अर्थ न अतीन्द्रिय है, अतिप्राकृतिक, न आध्यात्मिक। अलौकिक अनुभूति का अर्थ है–ऐसी अनुभूति जो मात्र लौकिक न होकर लोकोत्तर हो, अर्थात् परिष्कृत अनुभूति। रस ब्रह्मास्वाद सहोदर है। सहोदर का अर्थ है सगाभाई अर्थात् रस ब्रह्मास्वाद (ईश्वरीय आनंद) का सगाभाई या ब्रह्मास्वाद के समान है। ब्रह्मास्वाद सहोदर का दूसरा विशिष्ट अर्थ है–रस विषयानंद से भिन्न चिन्मय अनुभव है। रस शुद्ध आत्मानंद या ब्रह्मास्वाद नहीं है क्योंकि ब्रह्मास्वाद स्थायी होता है, रस अस्थायी स्थिति है। इसके अलावा रस लौकिक स्थितियों का पूरी तरह लोप नहीं होता। मूल बात यह कि काव्यानंद और ब्रह्मास्वाद दोनों आत्मानंद के ही भेद हैं। सारांश यह है कि रस काव्य का आस्वाद है और यह आस्वाद एक प्रकार की आनंद चेतना है। आत्म–चेतना का अर्थ है आत्म साक्षात्कार का आनंद।

अभ्यास प्रश्न–

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।